REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 8 | MAY - 2026

आधुनिक काल में मध्य प्रदेश में प्रचलित लोग गायन का विवेचनात्मक अध्ययन

वनिता मरकाम
शोधार्थी संगीत,
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).

डॉ. देवाशीष बनर्जी
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).

सारांश –

लोक संगीत किसी भी समाज की सांस्कृतिक आत्मा होता है। यह न केवल जनमानस की भावनाओं, अनुभवों और परंपराओं का दर्पण होता है, बल्कि सामाजिक एकता और सांस्कृतिक पहचान का भी प्रमुख माध्यम होता है। मध्य प्रदेश, जिसे भारत का हृदयस्थल कहा जाता है, सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध प्रदेश है। यहाँ की विविध भाषाएं, लोक परंपराएँ और जनजातीय विविधता, लोक संगीत को कई रूपों में प्रस्तुत करती हैं। आधुनिक काल में तकनीकी प्रगति, शहरीकरण और वैश्वीकरण ने लोक जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है और लोक संगीत भी इससे अछूता नहीं रहा। पारंपरिक लोकगीत अब मंचीय रूप, फिल्मी गीतों और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर नए रूपों में प्रस्तुत हो रहे हैं। यह बदलाव जहाँ लोक संगीत को व्यापक पहचान दिला रहे हैं, वहीं इसकी मौलिकता, आत्मिक गहराई और पारंपरिक शुद्धता पर भी प्रश्नचिन्ह खड़े हो रहे हैं।

मुख्य शब्द – लोक संगीत, समाज, सांस्कृतिक आत्मा, सामाजिक एकता एवं सांस्कृतिक पहचान।

प्रस्तावना –

मानव स्वभाव की मूल प्रवृत्ति अपने आन्तरिक भावों, संवेदनाओं तथा अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की रही है। आदिम मानव ने अपने उद्‌गारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रारम्भ में संकेतों, ध्वनियों तथा अस्पष्ट शब्दों का सहारा लिया। यही ध्वनियाँ कालान्तर में संगीत और कविता के प्रारम्भिक रूप के रूप में विकसित हुईं।[1] मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ–साथ सामूहिक जीवन की अवधारणा सुदृढ़ हुई और गीत, संगीत तथा नृत्य सामाजिक अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम बन गये। सामूहिक नृत्यों एवं गीतों के माध्यम से मनुष्य ने परस्पर प्रेम, सद्‌भाव, संगठन तथा सामाजिक एकता की अनुभूति प्राप्त की। यही सामूहिक संगीत आगे चलकर 'लोकगीत' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[2]

प्राचीन समाज में धार्मिक अनुष्ठानों, वीर पूजा, विवाह, जन्मोत्सव तथा कृषि संबंधी पर्वों के अवसर पर गीत एवं नृत्य का विशेष महत्व था। लोग अपने पूर्वजों तथा वीर व्यक्तियों के सम्मान में गीत गाते और नृत्य करते थे। इसी प्रकार कृषि उत्पादन एवं धन–धान्य की समृद्धि की कामना से विभिन्न उत्सव आयोजित किए जाते थे।[3] फसल पकने पर स्त्री–पुरुष सामूहिक रूप से उल्लासपूर्वक नृत्य एवं गायन करते थे। इन उत्सवों में

शान्त, वीर, करुण तथा श्रृंगार रसों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती थी, जिनकी अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से की जाती थी।[4]

समय के साथ लोकसंगीत में विविध परिवर्तन एवं परिवर्धन हुए। विभिन्न भावों एवं परिस्थितियों के अनुरूप धुनों, लयों तथा वाद्ययंत्रों का विकास हुआ। वीर रस के नृत्यों में उत्साह एवं उछाल की प्रधानता थी, जबकि श्रृंगार रस से सम्बद्ध नृत्यों में कोमलता एवं भावाभिव्यक्ति का समावेश हुआ।[5] इसी क्रम में बीन, डफ आदि वाद्ययंत्रों का विकास हुआ, जिन्होंने लोकसंगीत को और अधिक प्रभावी बनाया। सामाजिक जीवन के विस्तार तथा ग्राम, कस्बों एवं नगरों के विकास के साथ लोकसंगीत की अभिव्यक्ति भी व्यापक होती गई।

प्रकृति एवं मानवीय संवेदनाओं के प्रभाव से लोकसंगीत में श्रृंगार एवं विरह के भावों का समावेश हुआ। प्रेम, वियोग तथा स्मृति से उत्पन्न भावनाओं ने विरह गीतों को जन्म दिया।[6] इन गीतों की धुनों में करुणा एवं संवेदनात्मक गहराई स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है। लोकगीतों में क्षेत्रीय परिवेश, भाषा, वेशभूषा, रहन–सहन तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। विभिन्न प्रदेशों में स्थानीय परिस्थितियों एवं लोकजीवन के अनुरूप नई धुनों एवं संगीत शैलियों का विकास हुआ।[7]

भारतीय लोकसंगीत की विविध शैलियों में कजरी, चैती, होरी, विरहा, बारहमासा, पूर्वी आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार गुजरात का गरबा, पंजाब के लोकगीत, बंगाल की लोकधुनें तथा उत्तर प्रदेश एवं बिहार के विरहगीत भारतीय लोकसंगीत की समृद्ध परम्परा को अभिव्यक्त करते हैं।[8] महाराष्ट्र के लोकसंगीत में जहाँ वीरता एवं उत्साह की प्रधानता दिखाई देती है, वहीं बंगाल के लोकगीतों में कोमलता एवं भावुकता का समावेश मिलता है। इस प्रकार भारतीय लोकसंगीत विविध सांस्कृतिक विशेषताओं एवं मानवीय भावनाओं का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है।[9]

भारतीय शास्त्रीय संगीत की मूल धारा भी लोकसंगीत से ही विकसित हुई है। लोकधुनों, लोकलयों तथा क्षेत्रीय संगीत परम्पराओं ने शास्त्रीय संगीत को आधार प्रदान किया।[10] भारतीय संगीत की यह परम्परा विश्व के अन्य देशों को भी प्रभावित करती रही है। विदेशी संगीत एवं नृत्य शैलियों में भारतीय लोकसंगीत की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संगीत की विशेषता यह है कि यहाँ गायन एवं नृत्य को व्यवस्थित शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया गया, जो अन्य देशों में अपेक्षाकृत कम विकसित हुआ।

वस्तुतः लोकसंगीत किसी भी समाज की संस्कृति, सभ्यता एवं सामाजिक चेतना का दर्पण होता है। भारतीय ग्रामीण संगीत में निहित परम्पराएँ, लोकमान्यताएँ तथा सांस्कृतिक धरोहर भारतीय समाज के प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास को समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती हैं।[11] अतः लोकसंगीत का अध्ययन केवल संगीत की दृष्टि से ही नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति एवं समाज के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

विश्लेषण –

मध्य प्रदेश राज्य में लोक गायन की परंपरा बहुत ही सशक्त और प्राचीन रही है। इस प्रदेश में चारों क्षेत्र निमाड, मालवा, बघेलखड़, बुन्देलखंड अंचल में अनेक पारंपरिक लोग गायन शैलियों प्रचलन में है। पर्व–त्यौहार, अनुष्ठान, ऋतु और संस्कार संबंधी लोकगीत गाने की परंपरा प्रत्येक अंचल में मिलती है। पुरूष परक और महिला परक दोनों तक की गायन शैलियाँ विभिन्न क्षेत्रों में देखी जा सकती है।

निमाड़ अंचल – निमाड़ अंचल की मुख्य लोक गायन शैलियाँ –

लोक गीत – निमाड के जीवन का कोई भी अवसर ऐसा नहीं मिलता जब कोई गीत नहीं गाया जाता हो। जन्म, विवाह और मृत्यु आदि सोलहों संस्कार के अवसरों पर अलग–अलग लोकधुनों में विभिन्न लोक गीत गाये जाते हैं। संस्कार गीत प्रायः घर की महिलायें ही गाती है। पर्व–त्यौहारों, अनुष्ठान गीतों की गायन शैली प्रायः अलग–अलग होती है। निमाड़ी लोक गायन का माधुर्य विवाह, गणगौर, सन्त सिंगाजी भजन, कलगी–तुर्रा आदि परंपरागत विधाओं में मिलता है।

कलगी–तुर्रा – कलगी–तुर्रा प्रतिस्पर्धात्मक लोक गायन शैली है। यह एक प्राचीन लोक गायकी है। इस गायन शैली का प्रसार एक समय कर्नाटक से उत्तर प्रदेश तक था। निमाड, मालवा, बुन्देलखंड और मण्डला में कलगी–तुर्रा गायन मण्डलियाँ अभी भी मौजूद है। चंग की थाप पर रात–रात भर कलगी–तुर्रा गाया जाता है।

इसके दो अखाड़े होते है. एक कलगी अखाड़ा दूसरा तुर्रा अखाड़ा। अखाड़े के गुरू को उस्ताद कहा जाता है। आशु कविता के साथ महाभारत की कथाओं, पौराणिक आख्यानों से लेकर वर्तमान प्रसंगों को सवाल–जवाब के शानदार माध्यम से पारंपरिक गायकी में पिरोया जाता है। कलगी–तुर्रा का एक अन्य पक्ष आध्यात्मिक भी है। कलगी दल शक्ति को तथा तुर्रा दल शिव को बड़ा बताने की कोशिश करता है।

कलगी तुर्रा की उत्पत्ति के संबंध में एक प्राचीन कथा प्रचलित है। चंदेरी के राजा शिक्षाल की राजसभा में दो प्रमुख ख्याल गायक तुकनगिर और शाहअली फकीर थे। दोनों हो ख्याल गायिकी में पारंगत थे। एक बार राजदरबार में दोनों का मुकाबला हुआ। दोनों ने एक–दूसरे से बढ़–चढ़कर जवाब दिये। राजा के लिए यह निर्णय करना मुश्किल था कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है? अन्ततः राजा ने दोनों को पुरस्कृत किया। तुकनगिर को अपनी पगड़ी का हीरा जडित तुर्य और शाहअली फकीर को माणक मोती से जड़ी कलगी भेंट की। तब से तुकनगिर के ख्याल गायिकी का नाम तुर्रा और शाहअली फकीर की गयिकी कलगी के नाम से प्रसिद्ध हुई। गोगार्यों के श्री समेरसिंह सुमन और कसरावाद के श्री मनसाराव इस समय तुर्रा और कलगी के सबसे बड़े गुरूओं अर्थात् उस्तादों में से हैं।

संत सिंगाजी भजन – संत सिंगाजी पन्द्रहवीं शती के निर्गुणी सन्त कवियों में सबसे अग्रणी हैं। अपनी आध्यात्मिक साधना और शुचिता के कारण संत सिंगाजी के पद समूचे निमाड़ और मालवा के हिस्से में इतने लोकप्रिय हुए कि निमाड़ से सिंगाजी के पद गायन की एक अलग शैली बन गई। संत सिंगाजी ने निमाड़ी में सैकड़ों की संख्या में आध्यात्मिक पदों की रचना की। कहा जाता है कि मृदंग और झाँझ के साथ उच्च स्वर में भजन गाने की शैली का विकास स्वयं संत सिंगाजी ने किया था। तब से आज तक निमाड़ के ग्राम–ग्राम में संत सिंगाजी के भजन गाये जाते हैं। संत सिंगाजी की छाप लगाकर आज हजारों लोक पद गायक मण्डलियाँ गा रही हैं। उन सभी में नागझिरी के श्री दगडू गप्पल और हरसूद की श्री जीवनता खेड़े की आज की संत सिंगाजी भजन शैली की श्रेष्ठ मण्डलियाँ कही जा सकती है।

निरगुणिया गायन शैली – निमाड़ी लोकगायन शैली में निर्गुणी और सगुणी संत कवियों की छाप लगाकर पदों की रचना और गाने की सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा रही है। इसमें कबीर, मीरा, रैदास, ब्रह्मानन्द, दादू, सूर आदि कवियों की छाप वाले भजन लोक में सबसे अधिक प्रचलित हैं। अनेक अनाम लोक–कवियों ने परंपरा से चली आ रही चिन्तन–धारा अथवा पन्थ को सर्वोपरि माना और अपनी रचनाओं में आंचलिक विशेषताओं, घटनाओं, लोक प्रतीकों को कल्पनाशील तरीके से समाहित कर कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया कि वे कबीर, सूर, मीरा आदि की रचना लगें। उन्होंने अपना व्यक्तित्व और कृतित्व सभी कुछ अपने प्रेरणा साध्य को समर्पित कर दिया। निर्गुण धारा के प्रवर्तक कवि शिरोमणि संत कबीर की विचारधाराओं का बाद में अनेक कवियों पर इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ा कि वे अपना नाम छोड़कर कबीर की छाप लगाकर पद गाने लगे। इसके कारण कबीर की विचार श्रृंखला समस्त उत्तरप्रदेश में फैल गई और आंचलिक बोलियों में भी कबीर की छाप लगाकर पद गाने लगे। इसके कारण निरगुणिया गायन की आंचलिक शैलियों का भी विकास हुआ। अलग–अलग अंचल में अपने–अपने ढंग से लोग कबीर के लोकपद गाने लगे। निगुणिया गायन शैली का मुख्य आधार वाद्य एकतारा और खड़ताल रहे हैं। एकतारे पर भजन गाते हुए कई साधु अथवा भिक्षुक ग्राम शहर की गलियों में मिल जाते हैं। ये प्रायः निरगुणिया भजन ही गाते हैं। निमाड में निरगुणिया भजन गायक इकतारे के साथ झाँझ मृदंग लगाकर भी गाते हैं। निरगुणिया गायन को नारदीय भजन भी कहा जाता है।

ढोला मारू – ढोला मारू की कथा राजस्थान की महत्वपूर्ण लोक गाथा है, जो ब्रज, मालवा, निमाड और बुन्देलखण्ड में थोडे–बहुत अंतर से विभिन्न लोक शैलियों में गायी जाती है। लोक कथा गायन की सुदीर्घ परंपरा में जिन प्रेम गाथाओं ने सर्वाधिक प्रसार पाया उनमें ढोला गारू की प्रेम गाथा सर्वोपरि है। मध्य प्रदेश के विभिन्न अंचलों में इसका प्रसार अलग–अलग शैलियों में हुआ, किंतु वे सभी गायन शैलियाँ हैं। श्री जगन्नाथ कुम्हार ने पुरानी परंपरागत शैली के सारे लक्षणों को सुरक्षित रखा है और गायन शैली को अपनी प्रतिभा के संसर्ग से एक नयी ताजगी प्रदान की है। इस अर्थ में उनका कार्य बहुत दुर्लभ है।

मसाण्या अथवा काया खोज के गीत – निमाड में मृत्युगीतों को मसाण्या अथवा कायाखोज के गीत कहते हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता संबंधी पारंपरिक गीत गाये जाते हैं। इनके गाने की शैली संत सिंगाजी भजन से थोड़ी भिन्न है। मसाण्या गीतों को भी झाँझ, मृदंग और इकतारे के साथ समूह में पाया जाता है। मसाण्या गीत पुरुषपरक है। मसाण्या गीतों में आत्मा को दुल्हन की उपमा दी गई है और शरीर को दुल्हा कहा गया है। मसाण्या गीत प्रायः मृत्यु के अवसर पर ही गाये जाते हैं, अन्य समय से गाना प्रतिबंधित होता है।

फाग गायन – होली के अवसर पर फाग गाये जाते हैं, जो प्रायः कृष्ण और राधा पर केन्द्रित होते हैं। दो या तीन ढफ बजाते हुए ऊँचे स्वर में सामूहिक रूप से पुरूष वर्ग फाग गायन अलग करता है, जिसमे हँसी–मजाक, ठिठोली, छेड़छाड़ के गीत प्रमुख होते हैं। स्त्री परक फाग गायन अलग होता है।

नागपन्थी गायन – निमाड में नागपन्थी, जोगियों में सर्वथा अलग प्रकार के लोक गायन की पद्धति है। नाथ जोगी भगवा वस्त्र पहने हाथ में रेकड़ी अथवा रूँ–रूँ बाजा बजाते गाते शहर में दिखाई देते हैं। नाथ जोगी प्रायः गोरखा, कबीर अथवा भरथरी गाथा गाते हुए मिल जाते है। निमाड़ की नाथ जोगी महिलायें प्रायः सुबह–सुबह परभाती गाती हुई मिलती है और घर–घर से नेग लेती है।

गरबा/गरबी/गवलन गायन शैली –

गरबा गीत – निमाड में गरबा स्त्रीपरक आनुष्ठानिक लोक गायन है। नवरात्रि में गरबे की स्थापना के साथ महिलाएँ ताली की थाप पर गरबा गीत गाती है, जिसकी गायन शैली सर्वथा अलग होती है। इसके साथ नृत्य प्रवृत्ति भी है। गरबी मूलतः देवी गीत है।

गरबी गीत – गरबी प्रायः पुरूषपरक लोकगायन है। इसे झाँझ, मृदंग के साथ पाया जाता है। गरबी गीत निमाड़ी लोक नाट्य गायन का एक प्रमुख अंग है। गरबी भक्ति, श्रृंगार और हास्यपरक होती है। गरबी की गायन शैली द्रुत से होती है, जो नृत्य और बैठकी गायिकी दोनों में चलती है।

गवलन – गवलन मूलतः कृष्ण लीला गीत है। इसके गायन की पद्धति गरबी से भिन्न होती है। गवलन गीतों का मुख्य उपयोग रासलीला में किया जाता है। गवलन गीत पुरुषपरक 6, जो झाँझ, मृदंग और ढोलक पर गाये जाते है।

मालवा अंचल –

मालवी लोकगीत – मालवा में पुंसवन, जन्म, मुण्डन, जनेऊ, सगाई, विवाह के अवसर पर पारंपरिक लोकगीत गाने की प्रथा है। पर्व–त्यौहार, ऋतु अनुष्ठान संबंधी गीतों के गाने की परंपरा भी समूचे मालवांचल में मिलती है। मालवी लोक गायन में एक प्रकार से बोली की मिठास के साथ वहाँ की प्रकृति, धरती और संस्कृति की समृद्धि और सौन्दर्य के पगे मूल स्वर सहज रूप में सुनाई देते हैं।

भरथरी गायन – मालवा में नाथ सम्प्रदाय के लोग चिंकारा पर भरथरी कथा गायन करते हैं, चिंकारा नरियल की नट्टी, बाँस और घोड़े के बालों से निर्मित एक प्राचीन और पारंपरिक वाद्य है। चिंकारा बालों में बने धनुष से बजाया जाता है, जिसमें रूँ–रूँ की मधुर ध्वनि निरन्तर निकलती है। भरथरी, गोपीचन्द्र कथा, गोरखवाणी, कबीर, मीरा आदि के भजन गाते हुए नाथपन्थी लोग भोर से मालवा के ग्रामों में आज भी मिल सकते हैं। कुछ नाथपन्थी अखाड़ों में सितार–तबले की संगत में बैठकर भरथरी गोपीचन्द्र भजनादि गाने की परंपरा है।

संजा गीत – संजा गीत मूलतः मालवा की किशोरियों की पारंपरिक गायन पद्धति है। इसमें किसी प्रकार का सह वाद्य नहीं होता। पितृपक्ष में किशोरियाँ संजा पर्व मनाती है। गोबर और फूल पत्तियों में संजा की सुन्दर आकृतियाँ बनाती हैं, शाम को उनकी पूजा–आरती करती है तथा संजा गीत गाती है। किशोरियों के मधुर कण्ठों से जब संजा गीतों के स्वर फूटते है तब ऐसा लगता है जैसे बाल्यावस्था की कोमल पवित्र भावनाओं का लोक

संगीत शाम के झुटपुटे में हर आँगन में साकार हो रहा है। सोलहवें दिन सर्व पितृ अमावस्या को किशोरियों अपनी सहेली संजा को सम्मान गीत गाते हुए विदा कर देती है। संजा एक गीति पर्व है।

निरगुणी भजन गायन – मालवा की निर्गुणी लोक पद गायन परंपरा बहुत पुरानी है। निरगुणिया भजनों में कबीर के अध्यात्म की छाप होती है, जिसमें नश्वर शरीर और अमर आत्मा और परमात्मा संबंधी तत्वों की सरल ग्रामीण प्रतीतों में विवेचना होती है। निरगुणिया भजनों में इकतारा और मंजीरे के स्वरों के साथ मालवा की लोकधुनों और मालवा बोली का माधुर्य देखा जाता है। निरगुणिया भजन गाने वाले कई दल मालवा में मौजूद हैं, उनमें श्री प्रहलाद सिंह टीपाण्या का इन सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है, जिन्होंने कबीर के मालवी लोकपद गायन को अपने स्वर और गायकी की देश में सर्वथा अलग पहचान बनाई है।

पर्व–त्यौहारों संबंधी गायन – होली पर फाग, दिवाली पर दिवारी, जन्माष्टमी पर कृष्ण लीला गीत, नवरात्रि में देवी गीत गाने की परंपरा समूचे मालवा में है।

हीड़ गायन – श्रावण के महीने में मालवा में हीड़ गायन की प्रथा है। इधर बाग–बगीचे में झूले पडते हैं, उधर ग्रामों में हीड़ गायन की प्रतिस्पर्धा शुरू होती है। हीड़ गायन मूलतः अहीरों के अवदानपरक लोक आख्यान हैं, जिसमें कृषि संस्कृति की आन्तरिक परतों का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। ग्यारस माता की कथा का गायन भी इसी अवसर पर किया जाता है। गोवर्धन पूजा के समय ही हीड़ गायन किया जाता है। हीड़ गायन ऊँचे स्वर में होता है, जिसमें अलप भी लिये जाते है।

बरसाती बारता – बरसाती बारता ऋतु कथा गीत है। बरसाती बारता का कथन और गायन बरसात के समय में किया जाता है। इसलिए इसका नाम बरसाती बारता पड़ा। मालवा के ग्रामों के घरो में बैठकर बरसाती बारता रात–रात भर कही और गाई जाती है। बरसाती बारता की शैली चम्पू काव्य की तरह होती है, जिसमें मालवी गद्य और पद्य दोनों का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। ऋतु गीतों में मालवा में बारहमासा गीत भी प्रायः बरसात में गाये जाते हैं।

बुन्देलखंड अंचल –

बुन्देली लोक गीत – शौर्य और श्रृंगार की धरती बुन्देलखण्ड की कला संस्कृति सबसे अनूठी है, जितने भी तरह के लोक राग देश में प्रचलित हैं, वे सभी बुन्देली लोक गीतों की परंपरा से प्रयुक्त हुए हैं। बुन्देलखण्ड में सबसे प्रसिद्ध लोक गीत आल्हा गायन है। यह लोक कवि जगनिक के द्वारा लिखा, वीर रस काव्य है। श्रावण मास में शिवरात्रि, बंसत पंचमी, मकर संक्राति के अवसर पर पुरूष तथा स्त्री समूहों द्वारा गाया जाने वाला लोक गीत, भोगा गीत अथवा बम्बुलिया कहलाता है। इसी प्रकार फाल्गुन माह में होली के अवसर पर स्त्री–पुरुष एक–दूसरे पर गुलाल रंग डालते हुए फाग गाते हैं। इसी प्रकार महाभारत की कथाओं को बेरायन गायन द्वारा गाया जाता है। बेरायन गायन में कलात्मकता के साथ–साथ प्रसंगानुकूल हाथ और चेहरे के हाव–भाव गायन शैली को प्रभावशाली बनाने में सक्षम होते हैं। देवी की स्तुति से सबंधित एक लंबा आख्यान जिसे भक्त कहते हैं, चैत्र और आश्विन मास में गाया जाता है। लोक गीतों में लोक धुनों की माधुरी का वैविध्य बुन्देली लोकगीतों की विशेष पहचान है। जितने भी तरह के लोक राग देश में प्रचलित हैं वे सब बुन्देली लोकगीतों की परंपरा में प्रयुक्त हुए है।

आल्हा गायन – आल्हा गायन वीररस प्रधान काव्य है। आल्हा की रचना लोक कवि जगनिक ने लगभग एक हजार वर्ष पहले की थी। आल्हाखण्ड की मूल भाषा बुन्देली थी, इस कारण जगनिक द्वारा लिखी आल्हा ऊदल की बावन लड़ाइयाक्र लोककण्ठों में सहज रूप से विराजमान हो गई। जगनिक द्वारा लिखित आल्हा गाथा का प्रामाणिक रूप आज तक नहीं मिल पाया है, लेकिन आल्हा का लोक प्रचलित रूप बुन्देलखण्ड के ग्राम के अल्हैत आज भी गाते हैं। फिर भी आल्हा की मूल कथा में अंतर नहीं आया है। उसमें लोक गाथा की गेयता और आल्हा और ऊदल के जीवन की घटनाओं में कोई खास फेरबदल आज तक नहीं हुआ है। आल्हा प्रायः हर ऋतु में पाया जाता है। इसमें वाद्य के रूप में मात्र ढोलक और नगड़िया का प्रयोग किया जाता है। ढोलक

बजाने वाला ही जोश में आल्हा गायन करता है। कहीं–कहीं आल्हा गायन खड़े होकर भी किया जाता है। बुन्देलखण्ड में कई गायक ऐसे हैं, जिन्हें आल्हा ऊदल की बावन लड़ादयाँ कण्ठस्थ हैं। आल्हा छंद के कारण उसका नामकरण आल्हखण्ड पड़ा। आल्हा खण्ड संसार की सबसे लंबी गाथाओं में से एक है।

जगदेव का पुवारा – पुवारा मूलतः भजन शैली में है। देवी की स्तुति से संबंधित एक लंबा आख्यान जिसे भक्त कहते हैं, चैत्र और क्वॉर मास में गाते हैं। इस अवसर पर जवॉर गीत भी गाये जाते हैं। देवी गीतों को लद के नाम से भी जाना जाता है। देव गीतों की धुनें मधुर होती हैं।

देवारी गायन – देवारी गायन दोहों पर केन्द्रित होता है। अहीर, गवली, बेरदी, घोसी आदि जातियों में देवारी गायन और नृत्य करने की परंपरा है। दीपावली के अवसर पर ग्वाल बाल सिर पर मोरपंख धारण कर घर–घर देवारी माँगते हैं, नेग पाते हैं और ऊँचे स्वर में दोहा गाकर ढोलक, नगड़ियाँ, बाँसुरी की समवेत धुन पर तेजी से नृत्य करते हैं। देवारी के दोहों के विषय कृष्ण–राधा प्रेम प्रसंग, भक्ति तथा वीर रस से पूर्ण होते हैं।

बेरायटा गायन – बेरायटा मूलतः कथा गायन शैली हैं, जिसमें मुख्य रूप से महाभारत कथाओं के साथ अनेक ऐतिहासिक चरित, लोक गायकों की कथाएँ गायी जाती है। बेरायटा गायन केन्द्रीय रूप से एक व्यक्ति गाता है और सहयोगी गायक मुखिया का साथ देते हैं और कथा को आगे बढ़ाने के लिए हुकारा देते हैं. बीच–बीच में कुछ संवाद भी बोलते हैं। बेरायट गायन में लोककथाओ का भी गायन किया जाता है। बेरायट गायन में कलात्मकता के साथ–साथ प्रसंगानुकूल हाथ और चेहरे के हाव–भाव गायन शैली को प्रभावशाली बनाने में सक्षम होते है।

फाग गायन – फाग गायन होली के अवसर पर होता है। फाल्गुन माह के लगते ही समूचे बुन्देखण्ड में ठाकुर फाग, ईसुरी फाग, राई फाग शुरू हो जाते हैं, जो होली जलने के बाद रंगपंचमी तक चलती है। स्त्री–पुरूष एक–दूसरे पर रंग गुलाल लगाकर गीत गाकर नृत्य करते हुए ठाकुर फाग खेलते हैं। ठाकुर फाग में मृदंग टिमकी और मंजीरा बजाया जाता है। ठाकुर राग में स्त्रियाँ जिराई का खेल खेलती है। स्त्रियाँ लकड़ी अथवा सॉटियों से गीत गाते हुए पुरुषों पर वार करती है और पुरुष चतुराई से वार से बचते हैं। जिराई का आकार अंग्रेजी के एच अक्षर के समान होता है। ईसुरी अथवा चौकड़ियाँ फाग बैठकर गायी जाती है। राई फाग राई नृत्य के साथ गाई जाती है।

भोला गीत अथवा बम्बुलिया – बम्बुलिया बुन्देलखण्ड की वाचिक परंपरा के मधुर गीत हैं जिन्हें लमटेरा गीत भी कहा जाता है। बम्बुलिया गीत प्रायः स्त्री–पुरुष समूह द्वारा बिना वाद्य के श्रावण मास में शिवरात्रि, मकर संक्राति के अवसर पर गाया जाता हैं। बम्बुलिया गीतों की राग लंबी होती है। स्त्री–पुरूष अलग–अलग आमने–सामने बैठकर समवेत स्वरों में गीत गाते हैं। गीत प्रायः प्रश्नोत्तर शैली में होते हैं। उनका दोहराव भी होता है। भोलागीत शिव और शक्ति से संबंधित होते हैं, नर्मदा स्नान जाते समय महिलाएँ समूह में भोलागीत गाती हुई निकलती है।

बघेलखण्ड अंचल –

बघेली लोकगीत – बघेलखण्ड में भी कई प्रकार के लोकगीतों का प्रचलन हैं, क्योंकि बघेली लोकगीत की गायन शैली मध्य प्रदेश के अन्य अंचलों से थोड़ी भिन्न है। बोली अवधी से प्रभावित हैं। इनमें मूल स्वर तीव्र होता है, बद्येली लोकगीतों से जहाँ पारंपरिक कल्पना का वैभव प्रसारित हैं। वहीं बघेलखण्ड की संस्कृति की झाँकी भी प्रतिबिम्बित होती है। बसदेवा बघेलखण्ड की एक पारंपरिक गायन जाति हैं जिन्हें 'हरबोले' कहा जाता है। बसदेवा परंपरा से कई तरह की लोकगाथा गाते हैं। बसदेवा फिर भी कृष्ण की मूर्ति और पीला वस्त्र धारण कर हाथ में चुटकी, पैन्जन और सारंगी लिए गाते हैं। बघेलखण्ड में बिरहा गायन परंपरा सभी जातियों में पायी जाती हैं। बिरहा प्रायः श्वेत सुनसान राहों में सवाल–जवाब के रूप में गाया जाता है। बिदेशिया गायन समूचे बघेलखण्ड में मिलता है। बिदेशिया की राग लंबी और गंभीर हैं। फाग गायन की शैली यहाँ सबसे अलग है। यहाँ नगाड़ी पर फाग गायन होता है।

फाग गायन – फाग गायन बघेलखण्ड की सबसे भिन्न और मौलिक परंपरा है। यहाँ नगाड़ों पर फाग गायन किया जाता है। फाग गायनों में पुरुषों की मुख्य भागीदारी होती है। सामूहिक स्वरों में फाग गीतों की पंक्तियों का गायन नगाड़ों की विलम्बित ताल पर शुरू होता हैं और धीरे–धीरे तीव्रता की ओर बढ़ता है। नगाड़ों की टंकार और समूह कण्ठों का ऊँचा स्वर फाग गायन में एक जोशीला वातावरण निर्मित करने में सफल होता है और गायक तथा वृन्द फाग गायन के साथ झूमने लगता हैं। बघेलखण्ड में फाग गायन की कई लोक मण्डलियाँ हैं।

बिरहा गायन – बघेलखण्ड बिरहा गायन परंपरा सभी जातियों में पाई जाती हैं। बिरहा की गायन शैली सर्वथा मौलिक और माधुर्यपूर्ण है। बिरहा प्रायः खेत सुनसान राहों में सवाल–जवाब के रूप में गाया जाता है। कहीं–कहीं बिरहा और बिना वाद्यों और सवाद्य गाये जाते हैं। कानों में अंगुली लगाकर ऊँची टेर के साथ बिरहा गाया जाता है। गायक गाते समय भौंहों को नचाता है, तब ऐसा लगता हैं कि जैसे कोई प्रश्न पूछ रहा हो। उतरती रात में बिरहा की तानें आकर्षक और कर्णप्रिया लगती है। बिरहा श्रृंगार परक बिरहा गीत है।

बिदेशिया गायन – बिदेशिया गायन समूचे बघेलखण्ड में मिलता है। गड़रिया, तेली, कोटवार जाति के लोग बिदेशिया गायन परपरा में विशेष दक्षता रखते हैं। बिदेशिया की राग लंबी और गंभीर होती है। बिदेशिया का गायन प्रायः जंगल अथवा सुनसान जगहों में किया जाता है। बिदेशिया विछोह और मिलन की अभिलाषा के गीत हैं, जिनमें लोकगायक नायिका के मन की आतुरता का सहज चित्रण होता है, जिसमें उपालम्भ भी होता है। उतरती गहरी सुनसान रात में बिदेशिया गीतों की तानें सुनने वालों को बेचैन कर देती है।

बसदेवा गायन – बसदेवा गायन बघेलखण्ड की एक पारंपरिक गायक जाति है जिन्हें 'हरबोले' कहा जाता है। बसदेवा मूलतः गाथा गायक है। श्रवण कुमार की कथा गायन करने के कारण इन्हें सुरमन गायक भी कहा जाता हैं। बसदेवा परंपरा से कई तरह की कथा और गाथाएँ गाते हैं। बरादेवा सिर पर कृष्ण की मूर्ति और पीला वस्त्र धारण कर हाथ में चुटकी, पैन्जन और हैं। बसदेवा मुख्यतः दो गायक होते हैं। मुख्य गायक गाथा की पंक्ति उठाता, दूसरा पंक्ति समाप्ति तक उसे उसी राग में तेजी से दुहराता है और अंत में हर गंगे की टेक हर पंक्ति के बाद लगाता है। बसदेवा जाति रामायण कथा के साथ कर्णकथा मोरध्वज, भरथरी, भोलेबाबा आदि लोक गायकों की चरित्र कथा गाते हैं।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः आधुनिक काल में मध्य प्रदेश में प्रचलित लोक संगीत की विभिन्न धाराएँ न केवल सांस्कृतिक धरोहर के रूप में महत्वपूर्ण बनी हैं, बल्कि इन्होंने समाज की सामाजिक–आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवन को भी गहरे रूप से प्रभावित किया है। यद्यपि लोक संगीत की ये धाराएँ अपने पारंपरिक रूपों में संरक्षण की चुनौती का सामना कर रही हैं, फिर भी विभिन्न शैलियों में नवाचार और तकनीकी विकास ने इनकी स्वीकार्यता को बढ़ाया है। मध्य प्रदेश में लोक संगीत की अनेक धाराएँ–बघेली, मालवी, निमाड़ी, गोंडी और भीली प्राकृतिक रूप से राज्य की सांस्कृतिक विविधता का परिचायक हैं। आकाशवाणी, लोक कला परिषद और विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा इन लोक संगीत रूपों का संग्रहण और प्रचार–प्रसार किया गया है। हालांकि, शहरीकरण, मीडिया के प्रभाव और सांस्कृतिक वैश्वीकरण के कारण लोक संगीत की मौलिकता में कुछ हद तक ह्रास हुआ है, फिर भी इसके संरक्षण के प्रयास निरंतर जारी हैं। लोक संगीत में नवाचार और वैश्वीकरण ने इसे एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। डिजिटल प्लेटफार्मों, यूट्यूब चैनल्स और सोशल मीडिया के माध्यम से लोक संगीत के प्रति युवाओं की रुचि बढ़ी है, लेकिन इसका उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक शिक्षा और जागरूकता भी है। परंतु, कुछ आलोचनाएँ भी हैं कि पारंपरिक लोक संगीत शैलियों में आधुनिक प्रभावों के कारण उनकी मौलिकता और परंपरागत मूल्य प्रभावित हो रहे हैं। मध्य प्रदेश के लोक संगीत ने न केवल राज्य की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखा है, बल्कि यह समाज के विभिन्न वर्गों में सामूहिकता, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता की भावना को भी प्रकट करता है। विशेष रूप से आदिवासी समुदायों के लोक संगीत ने उनकी परंपराओं और विश्वासों को जीवित रखा है, जिससे समाज के विभिन्न हिस्सों के बीच समझ और आदान–प्रदान को बढ़ावा मिला है। वर्तमान समय में लोक संगीत के सामने प्रमुख चुनौतियाँ हैं जैसे कलाकारों को मंच का अभाव,

पारंपरिक उपकरणों का विलुप्त होना और शहरीकरण के कारण युवाओं में घटती रुचि। इन चुनौतियों का समाधान पारंपरिक संगीत को समकालीन मंचों पर प्रस्तुत करना, नई पीढ़ी में सांस्कृतिक जागरूकता उत्पन्न करना और सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा संरक्षण योजनाओं को मजबूत करना है। इस प्रकार मध्य प्रदेश का लोक संगीत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को सहेजे रखते हुए एक गतिशील रूप में आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है। जहाँ एक ओर यह संगीत युवा पीढ़ी के बीच लोकप्रिय हो रहा है, वहीं दूसरी ओर इसे सुरक्षित रखने की आवश्यकता भी अत्यधिक बढ़ गई है। लोक संगीत के विभिन्न रूपों का अस्तित्व बनाए रखना और उन्हें भविष्य की पीढ़ियों तक पहुँचाना एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिसे समग्र प्रयासों के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है।

संदर्भ –

[1] शर्मा, हरिश्चन्द्र. भारतीय संगीत का इतिहास. हाथरसः संगीत कार्यालय, 2008, पृ. 42.
[2] वर्मा, लक्ष्मीनारायण. लोकसंगीत और भारतीय संस्कृति. प्रयागराजः लोकभारती प्रकाशन, 2012, पृ. 67.
[3] मिश्र, गोपाल. भारतीय लोकजीवन और संगीत. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 91.
[4] त्रिपाठी, रामनरेश. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि. इलाहाबादः साहित्य भवन, 2009, पृ. 118.
[5] शुक्ल, रमेशचन्द्र. भारतीय लोकनृत्य एवं संगीत. भोपालः म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2014, पृ. 136.
[6] पाण्डेय, शशिभूषण. लोकगीत और लोकसंस्कृति. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2011, पृ. 153.
[7] सिंह, आर.पी. भारतीय ग्रामीण संगीत परम्परा. जयपुरः रावत पब्लिकेशन, 2015, पृ. 104.
[8] कुमार, अरविन्द. भारतीय लोकसंगीत की परम्परा. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन, 2017, पृ. 172.
[9] चतुर्वेदी, जगदीश्वर. भारतीय संगीत और संस्कृति. नई दिल्लीः अनामिका पब्लिशर्स, 2013, पृ. 88.
[10] अवस्थी, सुरेशचन्द्र. शास्त्रीय संगीत का विकास. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 145.
[11] श्रीवास्तव, वीरेन्द्र. भारतीय लोकसंगीत : स्वरूप और विकास. इलाहाबादः साहित्य भवन, 2016, पृ. 201.